ज़िन्दगी का सिस्टम

आयतुल्लाहिलउज़मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
सम्पादनः नूरे हिदायत फ़ाउन्डेशन

क़िस्त-6

तीसरा अध्याय काम का चरण

तक़लीद

इन्सान के करने वाले कर्तव्य (Practical Duties)

विश्वास के पोढ़े होने का खुला नतीजा कर्मों में ज़िम्मेदारी का एहसास (Sense) है। 'बालिग़' होने के साथ ही इन्सान पर ये ज़िम्मेदारी सख़्ती के साथ लागू होगी । शरीयत के लेहाज़ से यह अब तक आज़ाद था, अब बंध गया, अब इसका उठना-बैठना, चलना-फिरना, रुकना, होठों का हिलाना और आंखों का चलना सब पर शरीयत का हुक्म लगाया गया और यह सब हिसाब-किताब में शामिल हो गये और उसके कर्म और कर्तव्यों की सख़्ती के साथ देखरेख होने लगी है ।

अब सबसे पहले जो नमाज़ का वक़्त आयेगा उसमें उसको वाजिब के तौर पर नमाज़ पढ़ना होगी और नमाज़ के लिए सही तौर पर पाक होना ज़रूरी होगा, जिसके लिए कुछ हालतों में तो स्नान ज़रूरी होगा और कुछ सूरतों में वज़ू ज़रूरी होगा । बहुत आसान था अगर नमाज़ और पाक होने के सभी मसले हर तरह से एक निश्चित होते और इनमें कोई फ़र्क़ (भेद) न होता। यह कोई किताब उठा लेता और जो कुछ इसमें लिखा होता उस पर काम करता, मगर मुश्किल ये है कि मसलों में फ़र्क़ है और अलग-अलग उलमा (धर्मशास्त्रियों) के फ़तवे आपस में अलग-अलग हैं यानी कुछ फ़तवों में फ़र्क़ पाया जाता है फिर अब ये क्या करें क्योंकि काम करने के लिए तक़लीद (अनुयाय) की ज़रूरत है ।

ज़िन्दगी के सिस्टम में तक़लीद की ज़रूरत

तक़लीद के बारे में अक्सर लोगों को ग़लतफ़हमी है। बहुत से लोग इसको पीरी-मुरीदी गुरू-चेले की तरह एक चीज़ समझते हैं, और कुछ इसको एक बेज़रूरत सी चीज़ समझते हैं। हालांकि अगर ग़ौर किया जाए तो ये बिल्कुल प्राकृतिक (natural) चीज़ है, जो दुनिया के हर श्रेणी (Walks of life) में चलता है, और किसी चीज़ को छूट नहीं है। ये ज़ाहिर है कि हर इन्सान हर कला का जानने वाला नहीं हो सकता, हर चीज़ में उसके जानने वाले (माहिर) होते हैं और कुछ ना जानने वाले, इसमें तो कोई शक नहीं कि ना जानने वाले लोग हमेशा ज़रूरत पड़ने पर जानने वाले लोगों के पास जाते हैं। ख़ुदाना न चाहे आपका कोई रिश्तेदार बीमार है अगर आप खुद डाक्टर हैं तो अक्सर आप खुद ही उसका इलाज करेंगे लेकिन अगर आप डाक्टर नहीं हैं, तो ज़रूर किसी हकीम वैद्य या डाक्टर के पास जायेंगे, उससे हाल कहेंगे, डाक्टर मरीज़ की जांच करेगा, दवा बतायेगा, आप उसके नुस्ख़े पर चलेंगे। दवा लायेंगे और रोगी को पिलायेंगे, ये तक़लीद नही ंतो क्या है ?

आपको कोई मकान बनवाना हो तो आप आर्किटेक्ट के पास जायेंगे, अपनी ज़रूरतें उससे बयान करेंगे, वह नक़्शा बनायेगा, ख़र्च का अन्दाज़ा लगायेगा, आप उसी के कहने पर चलेंगे, ये तकलीद ही तो है ।

आपका कोई मुक़द्दमा सामने आता है तो आप वकील या बैरिस्टर के पास मसला लेके जाते है, मुक़द्दमें की पूरी बात सुनाते हैं, वह उसके सारे पहलुओं पर ग़ौर करता है, आप उसी की राय के मुताबिक़ कागजों को जमा करते हैं, गवाह तैयार करते हैं और

मुक़द्दमें की पैरवी करते हैं, ये तक़लीद के अलावा कुछ और नहीं है।

यही बात हर चीज़ में है, फिर जिस मसले की अहमियत जितनी ज़्यादा होती है उतना ही उसमें सूझ-बूझ और सोच-समझ से काम लेना पड़ता है । अगर कोई मामूली रोग है तो जो हकीम भी उस वक़्त वहां मौजूद हो उसी के पास जाकर नुस्ख़ा लिखा लिया लेकिन अगर रोग जटिल है तो कोशिश होती है कि जो सबसे बड़ा हकीम या डाक्टर उस समय हो उससे इलाज करवाया जाए। इसी तरह अगर छोटा सा मकान बनवाना है तो किसी मामूली नक़्शा बनाने वाले से नक्शा बनवा लेंगे, लेकिन अगर कोई आलीशान कोठी बनवानी हो तो बड़े इन्जीनियर की तलाश हागी। कोई मुक़द्दमा बिल्कुल मामूली दस-पांच रुपये का है तो किसी मामूली वकील से काम चल सकता है, लेकिन अगर बड़ा मुक़द्दमा है तो फिर आप सब से बड़े वकील के फेर में होगें। हालांकि एक बड़े डाक्टर, बड़े आर्किटेक्ट और बड़े वकील से भी ग़लती हो सकती है, इसलिए कभी उनके हाथों में और कभी उनके हाथों में भी असफलता/मात हो सकती है । मगर अक़्ल का फ़ैसला ये है कि अपनी तरफ़ से कोई कमी नहीं होनी चाहिए, उसके बाद भी अगर नुक़्सान हो जाए तो वह क़िस्मत से जुड़ा है, इन्सान का इसमें कोई द्वोष नहीं है।

अब देखिये कि शरीयत के हुक्म, यह वह चीज़ है जिससे इन्सान का दीन (धर्म) और दुनिया दोनों जुड़े हैं। अगर हर इन्सान इतनी जानकारी रखता है कि खुद खोज रिसर्च करके और समझ कर राय दे सकता तो बेशक तक़लीद की ज़रूरत ही नहीं थी। इसके मानी ये हैं कि हर शख़्स मुजतहिद (धर्म के हुक्मों/आदेशों को समझने और रिसर्च करने वाला) होता तो दूसरे की राय की ज़रूरत ही नहीं होती। मगर दुनिया के आम सिस्टम के आधार पर यह काम मुम्किन ही नही है और न ही शरीयत में इसका हुक्म है । ज्ञान का कितना ही विकास हो जाए फिर भी दो वर्ग रहना ज़रूरी है। एक धर्म के जानने वाले लोग यानी आ़लिम जो धार्मिक मसलों को समझ सकते हैं दूसरे न जानने वाले आम लोग यानी जाहिल। अब ये आम लोग क्या करें? क्या ये समझ लिया जाए कि शरीयत के हुक्मों की उन्हें बिल्कुल ज़रूरत ही नहीं, और उन्हें बिल्कुल आज़ाद छोड़ दिया जाए? फिर जब ये सही नहीं तो इसके सिवा और क्या सूरत है कि ना जानने वाले लोग (जाहिल) जानने वाले लोगों (आ़लिम) की तरफ़ जाऐं और उन से पूछ कर मसलों पर चलें। इसी का नाम 'तक़लीद' है ।

इमामों के रहते तक़लीद का सिस्टम

यह कोई नई चीज़ नहीं है बल्कि इमामों के काल में भी मौजूद थी। यह बात ज़ाहिर है कि इमाम किसी एक जगह (केन्द्र/Centre) पर होता है। इस्लाम और शिया धर्म बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था और उन दूर रहने वाले लोगों पर भी शरीयत के हुक्म पर चलने की ज़िम्मेदारी थी। हर एक के लिए ये मुम्किन नहीं था कि वह खुद इमाम की सेवा में उपस्थित होकर मसलों को सीधे पूछे और शरीयत की जानकारी प्राप्त करे। बल्कि कुछ लोग ऐसे होते थे जो इमाम[अ०] से धार्मिक मसलों का ज्ञान प्राप्त करें और उसे दूसरे ना जानने वाले लोगों तक पहुँचायें। ज़ाहिर है कि इमामों की हदीसों (कथन) में आम बात (Generally सबके लिए) होती थीं। ख़ास बातें (specially ख़ास ख़ास लोगों के लिए अटूट अचूक बातें) होती थीं और बन्धन सच्चाईयाँ होती थीं और रुपक (जहाँ शब्दों के सीधे माने से मतलब न निकले जैसे किसी को शेर कहने कहने के माने हैं कि वह बहादुर है, चौपाया शेर नहीं।) आम लोगों को चाहे वह अरब के रहने वाले ही क्यों न हों, इसका मौक़ा हरगिज़ नहीं है कि वह किसी हदीस को सुनकर आंख बन्द करके उसके सीधे माने पर चलें। वह असहाब (इमामों के साथी) में से धर्म के ज्ञानी ही थे कि जो हदीसों से मानी -मतलब निकाल कर उसके नतीजे (Result/ Inference) यानी धर्म के आदेशों को न जानने वालों को बताते थे। यह वही इज्तिहाद (Research) और

तक़लीद (अनुसरण/Following) है जिसके बारे में आज सवाल सामने है। खुद रावियों (इमाम से हदीस सुनकर बयान करने वाले) में से सब ऐसे नहीं थे जो सदा अपने निजी ज्ञान पर चलें इसलिये कि कुछ रावी तो ऐसे हैं जिन्हें इत्तेफाक़ से इमाम के पास पहुँचने का सिर्फ़ एक ही मौक़ा मिला और उस वक़्त की कोई बात उन्होने बयान कर दी, लेकिन वह रावी लोग जो इमाम के बहुत ज्यादा ख़ास होते थे वे भी हर वक़्त हर मौक़े पर मौजूद नहीं रहते थे। इमाम(अ०) की ज्ञान वर्षा (लोगों तक धार्मिक हुक्मों/आदेशों के पहुँचने का सिलसिला बराबर जारी था। बेशक इमाम(अ०) बहुत से मसले इनके मौजूद न रहने पर भी बयान करते थे। अब इन रावियों के लिए जो उस वक़्त मौजूद नहीं थे उन मसलों को जानने का ज़रिया, उन रावियों का बयान ही हो सकता है जो इत्तेफाक़ से उस वक़्त मौजूद थे, जब इमाम(अ०) ने मसला बयान किया था। फिर ये बात खुली हुई है कि शब्दों का दुहराना हर एक के बस की बात नहीं है इसके लिए अच्छी याद रखने की अच्छी पुट की ज़रूरत है। सच्चाई यही है कि दूसरे शब्दों में मानी और मतलब का दुहराना ही है जिसके ज़रिये से रवायतें फैलती हैं। ज़ाहिर है कि मानी और मतलब का दुहराना खुद रावी की समझ और नतीजा (Conclusion) निकालने पर निर्भर है और जो कुछ वह समझता है उसी को दूसरों तक पहुँचाता है। वह दूसरे लोग जो इस रवायत को सुन कर उस पर चलते हैं, वह उसकी समझ और निकाले हुए नतीजे पर भरोसा ही तो करते हैं। ये तक़लीद नही तो और क्या है?

कुर्आनी सुबूत

खुद कुर्आन मजीद में दीनी मसलों की जानकारी का जो तरीक़ा बताया गया है वह यही है। पुण्य कथन है।

''क्यों नहीं इनमें से हर समुदाय में से एक गिरोह सफ़र करता ताकि वह दीनी मसलों को समझे और वापस आने के बाद अपने गुट को डरायें। यानी शरीयत (धर्म क़ानून) के कर्तव्यों को चेतायें, शायद कि वह डरें यानी उन कर्तव्यों का पालन करने लगें।

यहाँ उन लोगों के लिए हुक्म दिया गया है जो दूर-दराज़ जगहों पर रहते हैं, उनमें से एक गिरोह को सफ़र करना चाहिए ताकि वह दीनी मसलों को मालूम करें।

यहां '*लेयसम*' नहीं है जिस के मानी ये होते हैं कि वह हदीसों को सुने और तब इसका ताल्लुक़ सिर्फ़ अख़बारी रवायतों के दुहराने या बताने से होता है बल्कि '*लेयतफ़क़्क़हू*'' का शब्द है यानी समझें, इसका ताल्लुक़ मानी मतलब से है और इनका समझना नतीजा निकालने से है। फिर जब वह वापस जाते हैं तो उन्हीं हुक्मों को अपने गुट तक पहुँचाते हैं। अब अगर उनके बताये हुए हुक्मों पर दूसरों का चलना सही न हो तो इस पहुँचाने का कोई फ़ायदा ही नहीं है। फिर साफ़ साफ़ इरशाद होता है कि वह लोग डरें यानी उनके बयानों से असर लें। इसका नतीजा सिर्फ़ ये है कि वह उन हुक्मों और कर्तव्यों पर चलने लगें। इसी को 'तक़लीद' कहते है।

हदीसें

हदीसों में भी इसका सबूत है। अबान बिन तग़लब से फ़रमाया है कि "ऐ अबान! मदीने में बैठा करो और फ़तवे दिया करो क्योंकि मुझे पसन्द है कि मेरे शियों (दोस्तों) में तुम्हारे ऐसे लोग दिखाई दें"।

युनुस बिन अबर्दुरहमान से दीनी मसलों को पूछने का हुक्म दिया। ये वही इज्तेहाद और तक़लीद का सिस्टम है जो इस वक़्त बाक़ी है यही उस वक़्त भी चल रहा था। बेशक उस वक़्त इज्तेहाद आसान था क्योंकि उस वक़्त मासूम इमाम(अ०) मौजूद थे और ज़्यादा शक-व-शुबहों के परदे बीच में आड़े नहीं आते थे। इस वक़्त इज्तेहाद (कुर्आन व हदीस से धर्म क़ानून के मसले निकालना) ज़्यादा कठिन हो गया है। क्योंकि राय में फ़र्क़ बहुत ज़्यादा है शक शुबहे की बहुतात है और इस ज़माने में मासूम(अ०) सामने मौजूद नहीं हैं लेकिन इस से इज्तेहाद की सच्चाई पर कोई असर नहीं पड़ता और न ही तक़लीद के मानी में कोई बदलाव पैदा होता है।

तक़लीद के केन्द्र का चुनना (तक़लीद किसकी की जाए?)

जिस मामले की जितनी ज़्यादा अहमियत होगी, उसके बारे में उतना ही जतन होगा। तक़लीद दीनी मसले से जुड़ी हुई चीज़ है, जिस पर इन्सान की दुनिया और आख़ेरत निर्भर है, इसलिए तक़लीद के बारे में ये नहीं हो सकता कि आँख बन्द करके जिसकी चाहे तक़लीद कर ली जाए बल्कि ज़रूरत है कि उसमें गहरी सूझबूझ, कड़ी छानबीन और चुनाव से काम लिया जाए। कुछ लोग तो इसमे 'आलम' (सबसे ज़्यादा जानने वाला) होने की शर्त ज़रूरी समझते हैं यानी उसकी तक़लीद ज़रूरी है जिसकी राय सभी इल्म रखने वालों में सबसे ज़्यादा सही (शुद्ध) हो। मगर इस तरह मेरे नज़दीक 'आलम' की पहचान बहुत ही मुश्किल बल्कि मुमकिन ही नहीं है, मुश्किल इस वजह से है कि अगर 'उलमा' किसी एक शहर एक सूबे या एक ही देश की हद में रहते तो फिर भी आसान था कि उन सबके ज्ञान के स्तर को समझ कर ये फ़ैसला किया जा सके कि 'आलम' कौन है, लेकिन एसे ज़माने में जबकि ज्ञान का घेरा बहुत ज़्यादा फैल चुका है और अलग-अलग देश में उलेमा मौजूद हैं, उन सबमें एक नाम की पहचान भी बहुत कठिन है, और नामुमकिन इस लेहाज़ से मैं कहता हूँ कि अ़ालम की पहचान (जांच-परख) करने वाले या तो आम लोग होंगे या फिर मुज्ताहिद। ज़ाहिर है कि अ़ाम लोग तो अ़ालम की पहचान नहीं कर सकते। उसको अगर समझ सकते हैं तो सिर्फ़ मुज्तहिद। मगर आलम होने का आधार सिर्फ़ इस पर नहीं है कि उसे कितनी ज़्यादा चीज़ें याद हैं या उसकी नज़र कितनी फैली हुई है बल्कि उसकी राय के ठीक होने पर है और ये ज़ाहिर है कि हर मुज्तहिद शरीयत के मसलों में कुछ न कुछ नज़रिया या दृष्टिकोण रखता होगा और जो बात उसकी राय से मेल खाती होगी उसी को वह सही समझेगा। इसीलिए वह सबसे सही राय देने वाला इन्सान उसी को समझेगा जिसकी राय ज़्यादा मसलों में उसके हिसाब से सही हों यानी खुद उसकी राय से मेल खाती हो लेकिन इससे 'अ़ालम' होने का सही पता कैसे चल सकता है?

इसके अलावा ग़ौर करने पर एक और राज़ का पर्दा उठता है, वह ये कि 'आलम' होने का असर उन मसलों में ज़ाहिर होता है जहाँ 'आलम' और 'ग़ैरआलम' में भेद हो, लेकिन हर मुज्तहिद जबकि खुद अपना नज़रिया रखता है यानी हर मसले में कुछ न कुछ अपनी जगह पर तय किये हुए है, तो वह खुद अपनी राय और नज़रिये को ही सही मानेगा और उसके अलावा जो भी हो वह उसे सही नहीं समझेगा। यहाँ तक कि इसके सामने किसी बड़े से बड़े के फ़तवे का बयान किया जाऐ तो वह कह देगा कि इस मसले में उनसे भूल-चूक हुई है यानी उनकी राय सही नहीं है।

इसका नतीजा ये निकला कि उन सभी मसलों में जहां इसके और किसी दूसरे मुज्तहिद की राय में फ़र्क़ है वह उनमें अपनी ही राय और नज़रिये को सही हुक्म समझता है और उसके ख़िलाफ़ जिसका भी फ़तवा है उसे सही नहीं समझता। इसके मानी ये है कि हर मुज्तहिद चाहे वह ज़बान से न कहे लेकिन अपनी जगह पर अपनी ही राय और नज़रिये को सबसे ज़्यादा सही समझता है।

ये और बात है कि कोई ठिठक के अपने 'आलम' होने का दावा न करे लेकिन वह मुज्तहिद होने की वजह से अपने नज़रिये और राय के ख़िलाफ किसी राय को सही नहीं समझेगा। फिर उसके लिए किसी दूसरे के आलम होने का क्या मतलब रह जाता है?

मेरे नज़दीक, तक़लीद के लिए इस बात की ज़रूरत है कि अपनी जानकारी और पहुँच की हद में जिसके ज्ञान और अ़मल (आचरण) यानी इज्तेहाद और तक़्वा (संयम) व परहेज़गारी पर सबसे ज़्यादा भरोसा विश्वास हो, उस की तक़लीद की जाए।

ज़िन्दगी के हर हिस्से में यही तरीक़ा अपनाया जाता है। अगर डाक्टर की खोज होगी तो ऐसे की जो डाक्टरी में माहिर/निपुर्ण हो यह ज्ञान है, और मरीज़ों की

तरफ़ ध्यान देने में कमी न करता हो, निजी भावनाओं की वजह से दवा में ख़राबी न डालता हो, ये उसका 'अमल' है । मुक़दद्में के लिए वकील या बैरिस्टर की ज़रूरत होती है तो ऐसे की जो क़ानून में कुशलता रखता हो, ये उसका ज्ञान है, और रिश्वत लेकर दूसरे पक्ष से मिल न जाता हो ये उसका आचरण है। तक़लीद का ताल्लुक़ दीनी मसले से है इसलिये ज़रूरत है कि वह आ़लिम हो यानी इज्तेहाद की क्षमता (Capability) रखता हो, और इसके साथ 'आदिल' हो यानी उसे अपने कर्तव्यों का पूरा एहसास हो वरना डर है कि वह ज़ाती मतलब के लिए दीन के हुक्मों में बदलाव कर देगा। आराम-विलास से काम ले और खोज-बीन व कोशिश में ढिलाई बरते, इसलिए मसले ग़लत बताए। किसी वक़्त कोई मसला न मालूम हो या उस मसले के बारे में अभी ग़ौर न किया हो, तो साफ़-साफ़ ये कह देना कि अभी ये मसला मेरी नज़र से नहीं गुज़रा है या अभी मैने इस मसले पर ग़ौर नहीं किया है, अपनी शान के ख़िलाफ समझे, इसलिए अटकल से जवाब दे दे और कुछ न कुछ बतादे ताकि उसकी अज्ञानता का परदा न टूटे और आम लोग उसे बहुत बड़ा आलिम समझ लें। कभी बात पर अड़ा रहे व हठधर्मी से काम ले और जो बात मुँह से निकल गई चाहे बाद में उस ग़लती का एहसास भी हो फ़िर भी पहली बात पर अड़ा रहे और सही राय को ज़ाहिर न करे। ऐसा आदमी कभी तक़लीद के लायक़ नहीं है। ज़रूरत है इस बात की कि उसे अपने कर्तव्य की अहमियत का सही एहसास हो, वह वाजिब को करने और हर हराम से दूर रहने का कड़ाई से पाबन्द हो, उसके साथ-साथ मसले की खोज-बीन मे संघर्ष, जतन से काम लेता हो अपने स्वार्थ को दीनी मसलों में न मिलाता हो, और घमण्ड, अहम्, व हठधर्मी की वजह से कभी उस सच्चाई को ज़ाहिर करने में ढिलाई न करता हो, ऐसा आदमी तक़लीद के लायक़ है। इन्हीं बातों की हिफ़ाज़त के लिए 'अदालत' की शर्त लगाई गयी और उसका आदिल होना ज़रूरी पाया गया।

अदालत (आदिल होना)

अदालत छिपी हुई चीज़ है, इसे 'ख़ुदा का डर, कर्तव्य का एहसास और ताक़त का जज़्बा कहा जा सकता है लेकिन चूँकि ये दिखने वाली चीज़ नहीं है इसलिए उसे सामने के प्रभावों यानी कामों के ज़रिये ही समझा जा सकता है। किसी इन्सान का अमली तौर से शरीयत का पाबन्द होना कि वह हर वाजिब (अनिवार्य) को करता है और हर हराम से दूर रहता है, इसी से हम समझ सकते हैं कि उसमें 'अदालत' है। अब ये बात कि वह कहाँ तक धर्म क़ानून से लगा बन्धा है इसके समझने का एक तरीक़ा, उसके साथ मेल-जोल करना, रहना-सहना है। यानी आप काफ़ी दिनों तक किसी के साथ रहे हैं और उसके सब हालात को जानते हैं, और आपने इतने दिनों साथ-साथ जीवन बिताने में ये अन्दाज़ा किया है कि उस में कर्तव्यों का एहसास पूरा पूरा है। दूसरा तरीक़ा ये है कि दो आदमी जिनके आदिल होने को आप इसी तरह समझते हों, वह किसी आदमी की अदालत की गवाही दें। तीसरा तरीक़ा ये है कि किसी के बारे में ज़्यादातर लोग अच्छे ख़्याल ज़ाहिर करते हैं और आम तौर पर उसके तक़्वे (संयम) और परहेज़गारी को माना जाता हो जिससे इन्सान को उसके बारे में इत्मिनान पैदा हो जाए।

ये वह तरीक़े हैं जिन से किसी इन्सान की 'अदालत' साबित हो सकती है ।

यह तरीक़ा अपनाना कि हम किसी ख़ानदान को मानते हैं इसलिए उस ख़ानदान में जो भी हो उसी की तक़लीद करेंगे या ये कि हमारे बड़े जिसकी तक़लीद करते थे हमें भी उसी की तक़लीद करना चाहिए, ये हरगिज़ सही नहीं है। इल्म का कमाल न मीरास है जो ख़ानदान में बंट जाती हो और न 'तक़्वा' और अच्छा चाल-चलन, छोड़ी हुई जायदाद है जो एक से बदल कर दूसरे के हाथ में आ जाये और बाप-दादा के तरीक़े पर चलना भी नजात (मोक्ष) का ज़िम्मेदार नहीं है।

ये इन्सान के दीन और दुनिया की नजात और कामयाबी का मसला है, इसमें उसे खुद अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास करना चाहिए।

तक़लीद का चलन

तक़लीद के मानी हैं किसी मुजतहिद से मज़हबी हुक्मों को (दीनी मसलों के हल) लेकर उन पर चलना। इसके लिए न किसी लिस्ट में नाम लिखाने की ज़रूरत होती है न मुजतहिद को ख़बर देने की कि मैं आपकी तक़लीद में आता हूँ।

मगर अफ़सोस है कि हमारे यहाँ आम लोगों के बीच में तक़लीद एक रस्मी चीज़ समझ ली गई है। किसी मुज्तहिद से कह दिया या एक काग़ज़ पर लिख कर भेज दिया कि हम आपकी तक़लीद में हैं । बस अब ये उनकी तक़लीद में हो गये, फिर कभी मसला पूछने की ज़रूरत महसूस नहीं की जाती और न ही उसके फ़तवे से जानकारी ली जाती है।

इस तरह की तक़लीद के नतीजे दूसरी तरह से सामने आते हैं। खुदा न करे किसी रिश्तेदार का इन्तेक़ाल हो जायेगा तो तक़लीद याद आयेगी, हम फुलां मुज्तहिद साहब की तक़लीद करते हैं इसलिये नमाज़े जनाज़ा वही पढ़ायेंगे। माशाअल्लाह शादी-ब्याह का मौक़ा होगा तो निकाह पढ़वाने के लिए उन मुज्तहिद साहब का दरवाज़ा खटखटाया जाएगा और अपने आप को उसका मुक़ल्लिद बताया जाएगा। बच्चे के ख़तने में दुआ पढ़वाना, ज़रूरत के वक़्त इस्तेखारा दिखलाना, ये वह काम है जो मुज्तहिद के समझ लिये गये हैं ।

जबकि ये वह काम है जिनमें मुज्तहिद की ज़रूरत नहीं है, बग़ैर उसके भी ये काम पूरे हो सकते हैं मगर जहाँ शरीयत के हुक्मों की परख पहचान जो ख़ास तौर से मुज्तहिद ही पर निर्भर है उसमें उसकी ज़रूरत नहीं समझी जाती ।

तक़लीद का जो पैमाना मैने बताया है कि जिस मुज्तहिद पर सब से ज़्यादा इत्मिनान हो उसकी तक़लीद की जाए, इस के बाद ये सवाल ही पैदा नहीं होता कि तक़लीद के लिए एक ख़ास मुज्तहिद किस लिए? ज़ाहिर है कि वह सबसे बड़ा मुज्तहिद जिस पर सबसे ज़्यादा इत्मिनान है वह एक सीमित ही हैसियत रखता होगा, इसलिए किसी भी अबा क़बा वाले और सर पर अमामा रखने वाले को देख कर उसी से मसला पूछ लेना, ये तो शरीयत के हुक्मों को बिल्कुल मामूली चीज़ समझ लेना है।

मैं तक़लीद के मसले में इस बात को भी सही नहीं समझता कि कुछ मसलों में एक मुज्तहिद की तक़लीद की जाय और कुछ मसलों में दुसरे मज्तहिद की, क्योंकि अक्सर मसले ऐसे हैं जो आपस में टकराते हैं और आपस में लगे बन्धे होते हैं यानी अगर एक पर चलेगा तो दूसरे पर इसका असर हो सकता है। (यानी कभी कभी एक काम दूसरे काम पर निर्भर होता है)।

अब तक़लीद करने वाला ये नहीं समझ सकता कि वह कौन से मसले हैं, अगर उसने दो-चार आदमियों की अलग-अलग मसलों में तक़लीद की तो अक्सर ये सामने आएगा कि कई मुज्तहिद की तक़लीद करने वाला उन मसलों को अलग अलग कर देता है। जो आपस में एक दूसरे से जुड़े हैं। ऐसे में अगर एक मसले में एक मुज्तहिद के फ़तवे पर चलेगा और दूसरे मसले में दूसरे मुज्तहिद के फ़तवे पर जिसका हुक्म पहले मुज्तहद से अलग है, तो इसका नतीजा ये होगा कि उसका अ़मल जो सामने आएगा वह दोनों के नज़दीक ग़लत होगा।

ये उसी तरह है जैसे आपको एक मकान बनवाना है। ज़ाहिर है कि इस मकान के दो ओर होंगे एक पूरब और एक पश्चिम। आप एक इंजीनियर के पास गये और उससे कहा कि इसके सिर्फ़ पूरब वाले हिस्से का नक़्शा बना दो, उसने जो ख़ास चीज़ें हैं जैसे-दालान, ड्राइंगरूम, रहने के कमरे बना दिये और उसके दिमाग़ में ये है कि दूसरी ज़रूरत की चीज़ें जैसे- बाथरूम, बावर्चीख़ाना, टॉयलेट वग़ैरह दूसरी तरफ़ बन जाएगा। उसके बाद आप दूसरे इंजीनियर के पास गये और पहले नक़्शे को दिखाये बग़ैर उससे पश्चिम के हिस्से का नक़्शा बनाने के लिए कहा तो उसने भी उन्हीं चीज़ों जैसे - दालान, ड्राइंगरूम, बेडरूम वग़ैरह पश्चिम की तरफ़ बना दी ये सोच कर कि बाक़ी चीज़ें पूरब के

हिस्से में बन जाएगी। आपने उन दोनों नक़्शों को लिया और उसके मुताबिक़ मकान तैयार कर लिया। अब नतीजा ये हुआ कि दोनों तरफ़ कमरे, दोनों तरफ़ ड्राइंगरूम, दोनों तरफ़ दालान मौजूद मगर पूरे घर में बाथरूम, पायख़ाना (लैट्रिन), बावर्चीख़ाना और दूसरी ज़रूरत की चीज़ें ग़ायब हैं । ये एक ही मकान के दो हिस्सों का दो इंजीनियरों से नक़्शा बनवाने का नतीजा है। पूरे मकान का नक़्शा इन दोनों में से कोई एक भी बनाता तो अपनी-अपनी जगह पर सही होता, मगर दोनों नक़्शो के मिल जाने से नतीजा वह हुआ जो दोनों के नज़दीक ग़लत होगा यानी अगर किसी मकान में सिर्फ़ कमरे ही कमरे और दालान ही दालान हों और दूसरी ज़रूरत की चीज़ें जैसे टॉयलेट, बाथरूम और किचन हो ही न तो कोई भी इंजीनियर इसे रहने के लायक़ एक पूरा मकान नहीं कह सकता।

इसी तरह अगर किसी आदमी को बुख़ार हो और किसी ख़ास जगह दर्द भी हो, एक डाक्टर के पास जाए और उससे सिर्फ़ दर्द के बारे में बताए और दर्द की दवा लिखवा ले अब दूसरे डाक्टर के पास जाए और उससे सिर्फ़ बुख़ार के बारे में बताए और उसकी दवा लिखवा ले, फिर इन दानों दवाओं को मिलाकर इस्तेमाल करे, अक्सर ये सूरत निहायत नुक़सानदे (Reaction) साबित होगी और कभी इससे जान का ख़तरा भी हो सकता है। हलांकि इनमें से किसी एक से भी अगर बुख़ार और दर्द दोनों का एक साथ इलाज कराया जाता तो दोनों उसका इलाज सही तरीक़े से कर देते और वह आदमी ठीक हो जाता है।

बिल्कुल यही बात शरीयत के मसलों की भी है कि कुछ हुक्म ऐसे है जो देखने में तो अलग-अलग हिस्सों में जुड़े हुए नज़र आते हैं, मगर उनकी जड़ एक ही होती है। मिसाल के तौर पर रमज़ान के महीने में किसी रात गुस्ल की ज़रूरत हो जाए और गुस्ल करने की गुंजाइश न हो तो 'तयम्मुम बदले गुस्ल' करने का हुक्म है, यानी इस नियम से तयम्मुम करें कि "तयम्मुम मैं करता हूँ बदले गुस्ले जनाबत के वाजिब क़ुर्बतन इलल्लाह"। इस तयम्मुम के बाद बहुत से उलमा का कहना है कि सोना जाएज़ नहीं है यानी अगर सो जाएगा तो वह तयम्मुम टूट जाएगा और फिर रोज़ा सही नहीं होगा। दूसरी बात (दूसरा हुक्म) जो सामने से मेरी नज़र में ज़्यादा सही है कि यहां सोना जाएज़ (सो सकता) है और इस तयम्मुम के बाद सो जाने से रोज़ा टूटता नहीं है यानी रोज़ा सही है। देखने में ये मसला रोज़े के हुक्मों से जुड़ा हुआ है। आप ने इस मसले को किसी आलिम से पूछा उन्होने कहा कि सोना जाएज़ है, कोई हर्ज नहीं। आप ने उनकी तक़लीद की और तयम्मुम करके सो गये।

दूसरी तरफ़ जब आप सो कर उठे और सुबह की नमाज़ पढ़ना हो तो अब वुज़ू करें या 'तयम्मुम' बदले गुस्ल करें?

देखने में ये मसला पाकी का है और नमाज़ से जुड़ा है, आपने इसे दूसरे आलिम से पूछा उन्होने कहा कि नमाज़ के लिये फिर तयम्मुम बदले गुस्ल करना चाहिए, यानी उनकी तक़लीद की और तयम्मुम बदले गुस्ल कर लिया और नमाज़ पढ़ ली। हालांकि दोनों ही मसले एक ही चीज़ से जुड़े हैं और आपने जो अ़मल किया है वह किसी आलिम के फ़तवे के लेहाज़ से सही नहीं हुआ।

असली अलगाव जो पैदा हुआ वह यहाँ से कि 'तयम्मुम' गुस्ल के लेहाज़ से 'पूरा बदल' है (इस नज़रिये के मुताबिक़) यानी 'तयम्मुम बदले गुस्ल' करने के बाद इन्सान उसी तरह पाक हो जाता है जिस तरह गुस्ल के बाद और जिन चीज़ों से वुज़ू या तयम्मुम टूट जाता है जैसे पेशाब, पाख़ाना, नींद आना, वग़ैरह से उस तयम्मुम बदले गुस्ल पर कोई असर नहीं पड़ता यानी उसकी पाकी तो बाक़ी रहती है लेकिन उन चीज़ों के जो तयम्मुम या वुज़ू को तोड़ देती है उनके हो जाने पर नमाज़ पढ़ने के लिए सिर्फ़ वज़ू की ज़रूरत होती है और अगर इन्सान के लिए नुकसान दे हो तो तयम्मुम बदले वुज़ू करना होगा। दूसरा नज़रिया कि तयम्मुम गुस्ल के लेहाज़ से अधूरा बदल है (इस नज़रिये के मुताबिक़) वह चीज़ें जो वज़ू या तयम्मुम को तोड़ देती है जैसे पेशाब, पाख़ाना,

नींद वग़ैरह के आ जाने पर 'तयम्मुम' बदले गुस्ल ' भी टूट जाता है और नमाज़ के लिए दोबारा 'तयम्मुम' बदले गुस्ल' करना होगा। जो लोग तयम्मुम को 'पूरा बदल' मानते हैं उनके नज़दीक सो जाना जाएज़ है लेकिन इस के बाद नमाज़ के लिए वजू करना चाहिए, जिस तरह अगर ये गुस्ल किये हुए होता तो जागने के बाद सिर्फ़ वुज़ू करना ज़रूरी था या अगर वुजु न कर सकता हो तो तयम्मुम बदले वुज़ू करना चाहिए लेकिन जो लोग 'पूरा बदल' मानते हैं उनके नज़दीक सोना जाएज़ नहीं औ अगर सो जाए तो नमाज़ के लिए फिर तयम्मुम के बदले गुस्ल करना चाहिए क्योंकि सो जाने से वह पहला तयम्मुम टूट गया और अब फिर ये उसी तरह नजिस हो गया।

आप सो तो गये मगर जागने के बाद नमाज़ के लिए वजू नहीं किया, तयम्मुम बदले गुस्ल किया जो किसी के नज़दीक सही नहीं था क्योंकि जिस मुज्तहिद से सोने की इजाज़ज मिली थी उसके नज़दीक सो कर उठने के बाद वुज़ू करना चाहिए था, और जिसके नजदीक सोकर उठने के बाद तयम्मुम बदले गुस्ल करना चाहिए, उसके नज़दीक पहले वाले 'तयम्मुम' बदले गुस्ल के बाद सोना जाएज़ नहीं है। इसलिए यकीन के साथ कहा जा सकता है कि आपने जो काम किया है उसकी वजह से या तो आपका रोज़ा ग़लत हो गया या नमाज़ सही नहीं हुई, क्योंकि जिसके नजदीक तयम्मुम 'बदले गुस्ल' के बाद सो जाना जाएज़ है उसके नज़दीक सोकर उठने के बाद नमाज़ के लिए वुज़ू ज़रूरी था और आप ने यहां वुज़ू नहीं किया लेहाज़ा बिना वुज़ू के नमाज़ पढ़ने की वजह से नमाज़ ग़लत हो गयी। और जिसके नजदीक 'तयम्मुम बदले गुस्ल' के बाद सोना जाएज़ नहीं था और आप सो गये लेहाज़ा तयम्मुम टूट गया और आप सुबह की अज़ान तक नजासत की हालत में सोते रहे इसलिए रोज़ा ग़लत हो गया, क्योंकि रोज़े के सही होने की शर्त है कि आप सुबह की अज़ान से पहले तक पाक हो जाएँ। इसका नतीजा ये है कि आपको नमाज़ की भी कज़ा करनी चाहिए और रोज़े की भी।

ये किस बात का नतीजा है ? इस बात का कि आपने एक अ़मल के लिए दो की तक़लीद की। अब चूँकि आप नहीं समझ सकते कि कौन से मसले एक दूसरे से जुड़े हैं और कौन से मसले एक दूसरे से अलग, इसलिए आपके लिए तो सही तरीक़ा यही है कि आप एक ही मुज्तहिद की तक़लीद करें। फिर जिस मसले में वह खुद इजाज़त दे कि आप इस मसले में किसी दूसरे मज्तहिद के फ़तवे पर अ़मल कर सकते हैं वह भी जिस पर पूरा इत्मिनान हो ताकि दूसरे मुज्तहिद के फ़तवे पर चलना जाएज़ होगा ।

इन्तेक़ाल कर चुके मुज्तहिद की तक़लीद

एक मसला जिसके बारे में शको-शुबहा होता है, वह मरे हुए मज्तहिद की तक़लीद का मसला है। ज़्यादातर लोग ये कहते हैं कि किसी ज़िन्दा मुज्तहिद ही की तक़लीद की क्या ज़रूरत है? मरे हुए मुज्तहिद ही की तक़लीद पर बाक़ी रहना तो कुछ उलेमा भी जाएज़ समझते हैं, मगर जहाँ तक ग़ौर किया जाता है तो मालूम होता है कि सचमुच खुद तक़लीद का जाएज़ होना बुनियादी जड़ और क़ानून पर तो निर्भर है नहीं, अगर क़ानून पर निर्भर होता तो हर इन्सान दीनी मसलों की जानकारी और खोजबीन (Research) का ज़िम्मेदार होता, यानी मुज्तहिद बनना हर इन्सान के लिए ज़रूरी होता मगर ऐसा होने से ज़िन्दगी का पूरा तानाबाना बिगड़ जाता और ज़िन्दगी की दूसरी ज़रूरतें पूरी नहीं हो पाती। इस ज़रूरत की वजह से तक़लीद की इजाज़त मिली है लेकिन जो बात ज़रूरत की वजह से होती है वह ज़रूरत ही के घेरे में सिमटी होती है और घेरे से आगे बढ़ने के लिए दलील की ज़रूरत होती है, अब देखना पड़ेगा कि तक़लीद की जो दलीलें हैं, क्या वह मरे हुए मुज्तहिद की तक़लीद का भी फ़तवा देती है या नहीं हैं, जैसे कुर्आन की आयत "हर गिरोह में से कुछ लोग दीन का इल्म सीखने के लिये निकलें" या वह हदीसें जिन में अबान बिन तग़लब को फ़तवा देने की बात की गयी है या यूनुस बिन अब्दुर्रहमान से मसला पूछने का हुक्म दिया गया है मगर ये बात ज़ाहिर है कि इन दलीलों में ज़िन्दा ही लोगों से हुक्म दिया जा रहा है। (......जारी)